मनोमय कोश साधना द्वारा परामनोवैज्ञानिक क्षमता का विकास

डॉ. इन्द्राणी त्रिवेदी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, योग एवं स्वास्थ्य विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

शोध सारांश

मानव शरीर में अगणित शक्तियाँ निहित हैं। जैसा स्थूल शरीर बाहर से दिखाई देता है केवल उतना ही दर्शनीय नहीं है अपितु अनेक तरह की विभूतियाँ व योग्यता भी इसी मानव के अंदर छिपी हुई हैं। ईश्वर ने जब मानव की रचना की तब उन्होंने उसे अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियों से सुसज्जित भी किया था। सामान्य अवस्था में व्यक्ति केवल अपनी इन्द्रियों के द्वारा सामान्य कार्यों को ही करता है किन्तु यदि इन्हीं इन्द्रियाँ के परे भी व्यक्ति में सामर्थ्य होती है। यह शक्ति कहीं अधिक व्यापक होती है जिसके द्वारा असंभव प्रतीत होने वाले कार्यों को भी सरलता से किया जा सकता है। अतः ये ही अतीन्द्रिय शक्तियाँ कहलाती हैं जो अपेक्षाकृत अपरिमित व असीमित होती हैं। इसे ही परामनोवैज्ञानिक क्षमता भी कहा जाता है। परामनोवैज्ञानिक क्षमता का अर्थ है मन के द्वारा मन की शक्तियों से परे अर्थात् मन की सीमा की शक्तियों से अधिक कार्य का होना। सामान्य जीवन किन्हीं–किन्हीं व्यक्तियों में भी यदा–कदा इन शक्तियों का परिचय प्राप्त होता रहता है। यह क्षमता योग की साधनात्मक प्रक्रियाओं द्वारा बढ़ायी जा सकती है। मनोमय कोश साधना योगशास्त्रों में वर्णित पंचकोशों में से एक कोश है जिसका संबंध मनःसंस्थान से होता है इस कोश की साधनाएँ हैं– ध्यान, त्राटक, जप व तन्मात्रा साधना। इन सभी अभ्यासों का मानसिक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव होता है और मन की सभी शक्तियों का विकास होता है साथ ही मन की क्षमता बढ़ने पर परामनोवैज्ञानिक क्षमता का भी विकास होता है। इस साधना के फलस्वरूप दूरदर्शन, दूरश्रवण जैसी सूक्ष्म जगत की अनुभूतियाँ प्राप्त होने लगती हैं जो इन्द्रियों की सामान्य क्षमता से परे होती हैं।

कुंजी शब्द– मनोमय कोश साधना, परामनोवैज्ञानिक क्षमता।

प्रस्तावना

मानव शरीर में अगणित शक्तियाँ निहित हैं। जैसा स्थूल शरीर बाहर से दिखाई देता है केवल उतना ही दर्शनीय नहीं है अपितु अनेक तरह की विभूतियाँ व योग्यता भी इसी मानव के अंदर छिपी हुई हैं। ईश्वर ने जब मानव की रचना की तब उन्होंने उसे अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियों से सुसज्जित भी किया था। सामान्य अवस्था में व्यक्ति केवल अपनी इन्द्रियों के द्वारा सामान्य कार्यों को ही करता है किन्तु उसके पास इन्हीं इन्द्रियाँ के परे भी सामर्थ्य होती है। यह शक्ति कहीं अधिक व्यापक होती है जिसके द्वारा असंभव प्रतीत होने वाले कार्यों को भी सरलता से किया जा सकता है। मानवीय सत्ता में अतीद्रिय चेतना का अस्तित्व स्वीकार किए बिना इन भविष्यवाणियों, पूर्वाभासों और दूरबोध की घटनाओं का कोई कारण ही नहीं रह जाता है। योगी और सिद्ध पुरूष जिस दिव्य चेतना को अपनी तप साधना के माध्यम से विकसित करते हैं, वह कई बार कुछ व्यक्तियों में अनायास ही उत्पन्न हो जाती है। अनेक लोगों में वह जन्म–जात रूप में पायी जाती है। इस क्षमता का विकास करके मनुष्य सीमित परिधि के बंधनों को काट कर असीम के साथ अपने संबंध सूत्र जोड़ सकता है और अपनी ज्ञान परिधि को उतना ही विस्तृत बना सकता है। सामान्य मनुष्यों की चेतना जिस स्तर की होती है, अतीन्द्रिय क्षमताओं से संपन्न मनुष्यों की चेतना इससे ऊपर उठी होती है। इसलिए उन्हें अनागत भविष्य, सुदूर स्थित घट रही घटनाओं और बहुत पहले घट चुकी घटनाओं की भी जानकारी हो जाती है। अर्थात् स्पष्ट है कि यदि अपनी चेतना को परिष्कृत बनाया जाय, तो कोई भी व्यक्ति अपने में अतीन्द्रिय दिव्य शक्ति विकसित कर सकता है।

हमारा मस्तिष्क सामान्यतः इन्द्रियगम्य अनुभूतियों और संवेदनाओं की जानकारी तक ही सीमित रहता है किन्तु मस्तिष्क में ही इन संभावनाओं के बीज भी छिपे रहते हैं कि पिछले दिनों क्या–क्या हो चुका, इस समय कहाँ क्या होने वाला है? इसकी जानकारी हो सके। ''मस्तिष्क ब्रह्माण्डीय चेतना से सम्पर्क बना सकने और उस क्षेत्र की जानकारियाँ प्राप्त कर सकने में समर्थ है। अविकसित स्थिति में उसे ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्द्रिय जैसे सामान्य उपकरणों पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे उसे सीमित जानकारी के आधार पर अल्पज्ञ बन कर रहना पड़ता है, किन्तु जब मस्तिष्कीय चेतना का अपेक्षाकृत अधिक विकास हो जाता है, तब बिना इन्द्रियों के सहारे दूरवर्ती घटनाओं तथा अविज्ञात के रहस्यों पर से पर्दा उठने लगता

है। अंतरिक्ष के अंतराल में अनन्त छिपी घटनाओं, संपदाओं, विभूतियों, शक्तियों, ऋद्धियों, सिद्धियों की जानकारी मिलने लगती है'' (आचार्य, 1998 क)।

यह क्षमता जिसे अतीन्द्रिय क्षमता कहा जा सकता है, सामान्य स्थिति में प्रसुप्त अवस्था में ही पड़ी रहती है किंतु परिष्कृत स्थिति में यह विशिष्ट क्षमता के रूप में दृष्टिगोचर होने लगती है। योग साधना ऐसी ही संभावनाओं का पथ–प्रशस्त करती है जिससे इन विलक्षण शक्तियों का स्वामी बना जा सकता है। इसी संदर्भ में यौगिक साधना की गूढ़तम साधना पद्धति के अंतर्गत मनोमय कोश की साधना अत्यंत प्रभावी है। इसका कारण है कि इसमें सम्मिलित सभी साधनाएँ मन को स्थिर व एकाग्र बनाने के महत्वपूर्ण हैं, यही स्थिरता मन की अंतर्निहित शक्तियों के जागरण हेतु प्रयुक्त की जाती हैं। आचार्य (1998 ख) ने मनोमय कोश की साधना के अंतर्गत निम्न साधनाएँ बतायी हैं– 1. ध्यान 2. त्राटक 3. जप व तन्मात्रा साधना। इन सभी अभ्यासों के द्वारा मन की विशिष्ट क्षमता विकसित होती है जिससे वह सामान्य गतिविधियों के अतिरिक्त विशेष रूप में अपनी भूमिका निभाता है।

परामनोवैज्ञानिक क्षमता–

परामनोवैज्ञानिक क्षमता या अतीन्द्रिय क्षमता सूक्ष्म शरीर का, मस्तिष्कीय चेतना का विषय है। शारीरिक और मानसिक हलचलों को मोटे रूप में देखा जाए तो यह एक प्रक्रिया है किन्तु थोड़ी गहराई में प्रवेश किया जाय तो प्रतीत होगा कि हमारी सामान्य गतिविधियों के पीछे कितनी असामान्य विधि व्यवस्था काम कर रही है। मस्तिष्क सोचने का कार्य करता है, निर्वाह की आवश्यकताएँ जुटाने तथा प्रस्तुत कठिनाइयों का समाधान ढूंढना उसका काम है। उसकी ज्ञान आकांक्षा इसी प्रयोजन के लिए उपयोगी जानकारी प्राप्त करने तक सीमित हो सकती है। उसके पीछे अचेतन मन की पर्त रक्त संचार हृदय की धड़कन, श्वास–प्रश्वास, आकुंचन–प्रकुंचन, ग्रहण–विसर्जन, निद्रा–जाग्रति जैसी अनवरत शारीरिक प्रक्रियाओं का स्वसंचालित विधि–विधान बनाये रहता है। आदतें अचेतन में जमा रहती हैं और आवश्यकता पूर्ति के लिए चेतन मन काम करता रहता है। मोटे तौर पर मस्तिष्क का कार्य क्षेत्र यहीं समाप्त हो जाना चाहिए। इससे आगे एक चमत्कारिक संसार का अस्तित्व सामने आता है, जिसकी अनुभूति तो होती है, पर कारण और सिद्धांत समझ में नहीं आता। इस प्रकार की अनुभूतियाँ प्रायः अतीन्द्रिय मनःचेतना की होती हैं। भूतकाल की अविज्ञात घटनाओं का परिचय, भविष्य का पूर्वाभास, दूरवर्ती लोगों के साथ वैचारिक आदान–प्रदान, अदृश्य आत्माओं के साथ संबंध, पूर्वजन्मों की स्मृति, चमत्कारी ऋद्धि–सिद्धियाँ, शाप–वरदान, जैसी घटनाएँ अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ मानी जाती हैं। व्यक्तित्व का स्तर भी इसी उपचेतना की पर्तों में अन्तर्निहित होता है। विज्ञानी इसे पैरासाइकिक तत्व कहते हैं।

इन्द्रिय शक्ति के आधार पर ही प्रायः मनुष्य अपनी जानकारियाँ प्राप्त करता है और उस प्रयास में जितना कुछ मिल पाता है, उसी से काम चलाता है। ये इन्द्रियाँ जितनी जानकारियाँ दे पाती हैं, उतनी ही व्यक्ति का ज्ञान–वैभव संभव होता है, पर जब मस्तिष्कीय चेतना का पिछले प्रयत्नों से अपेक्षाकृत अधिक विकास हो जाता है, तो फिर बिना इन्द्रियों की सहायता के ही समीपवर्ती एवं दूरवर्ती घटनक्रमों की जानकारी होने लगती है। इतना ही नहीं ब्रह्माण्डव्यापी ज्ञान–विज्ञान की असंख्य धाराओं से अपना संपर्क बन जाता है। प्रयत्नपूर्वक तो थोड़ा–सा धीरे–धीरे ही कमाया जा सकता है, पर यदि किसी अक्षय रत्न भण्डार पर अधिकार प्राप्त हो जाए, तो अनायास ही धन कुबेर बना जा सकता है। अंतरिक्ष के अंतराल में असंख्य मनीषियों की ज्ञान–संपदा बिखरी पड़ी है। विकसित सूक्ष्म शरीर उस ज्ञान–भण्डार से संबंध मिला सकता है और अपनी जानकारियों का इतना विस्तार स्वल्प समय में ही कर सकता है, जितना सामान्य प्रयत्नों से संभव नहीं हो सकता।

आचार्य (1998 ग) के अनुसार ''सामान्यतः ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से ही ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों के शोध के अनुसार एक छठी इन्द्रिय भी है जो ऐसी जानकारियाँ देने में समर्थ है जिसे मन, बुद्धि से परे कहा जाता है। शारीरिक श्रम और मानसिक शक्ति से ओगे की गहराई में उतरने पर उस क्षमता का अस्तित्व सामने आता है जिसे अतीन्द्रिय क्षमता कहा जाता है।''

अतीन्द्रिय क्षमता की भौतिक अभिव्यक्ति का सर्वप्रथम वैज्ञानिक परीक्षण फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक काउण्ड एगेनर डी. गेस्परिन ने किया था। उन्होंने अन्य वैज्ञानिकों को साथ लेकर एक प्रयोग किया और देखा कुछ वस्तुओं को बिना स्पर्श किए एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाने की क्षमता रखते हैं। बिना स्पर्श किए हटाने वाली शक्ति को उसी प्रकार उन्होंने मापा जैसे भौतिक विज्ञानी गुरूत्वाकर्षण शक्ति को नापते हैं। अभी तक किसी वस्तु का गुरूत्वाकर्षण नियमों के विरूद्ध अधर में झूलना या ऊपर उठना उस शक्ति के नियमों के प्रतिकूल माना जाता रहा है, किन्तु देखा गया है कि यह कार्य मानव अपनी प्रचण्ड आत्म शक्ति के बल पर संभव कर दिखा सकता है (आचार्य, 1998 ग)।

परामनोवैज्ञानिक क्षमता का केन्द्रः मन

दैनन्दिन जीवन में मन की सामान्य शक्तियों का ही अनुभव व आभास होता है। परन्तु मन की शक्तियों को किसी सीमा या परिधि में नहीं बांधा जा सकता है। आचार्य (1998 घ) के अनुसार ''मन ही जीवन है, मन ही सब सिद्धियों का साधन है, मन ही देवता और मन ही भगवान है। मन का पूर्ण विकास ही एक दिन मनुष्य को अनन्त सिद्धियों, सामर्थ्य का स्वामी बना देता है।''

मानव शरीर में मन की स्थिति, उपयोगिता एवं महत्व विशेष रूप से बताई गई है। क्योंकि शरीर में सम्पादित होने वाली प्रत्येक क्रिया मन से प्रभावित होती है। यद्यपि मन, इन्द्रिय और शरीर को चैतन्य का

प्रकाश आत्मा के द्वारा ही मिलता है। किन्तु मन के अभाव में केवल इन्द्रियों के द्वारा आत्मा को ज्ञानोपलब्धि होना नितान्त असम्भव है। अर्थात् आत्मा को जो ज्ञानोपलब्धि होती है, उसका मुख्य साधन मन ही है। ''शरीर में मन की स्थिति अन्तःकरण के रूप में है। क्योंकि मन की शरीर के अन्दर अवस्थिति होने से उसे अन्तःकरण की संज्ञा दी गई है तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ बाह्यकरण कहलाती हैं, क्योंकि बाह्य इन्द्रियाँ दिखाई देती हैं'' (आचार्य, 2003)।

मन का सामान्य अर्थ ज्ञान के संदर्भ में किया जाता है। जैसा कि कहा गया है– ''मन् ज्ञाने बोधने वा धातुः'' अर्थात् 'मन् ज्ञाने' धातु से मनस् या मन शब्द निर्मित हुआ है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार मन् धातु ज्ञान अथवा बोधन क्रिया के लिए प्रयुक्त होता है। तद्नुसार जिसके द्वारा जाना जाता है या ज्ञान प्राप्त किया जाता है अथवा बोध होता है वह मन कहलाता है।

मन सभी इंद्रियों का राजा कहलाता है क्योंकि सभी इंद्रियाँ उसके अधीन ही कार्य करती हैं। अतः मन अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। मन ही बंधन और मुक्ति का हेतु है। योग वासिष्ठ में कहा गया है–

सर्वेषामुत्तम स्थानां सर्वा सांचिर संपदाम्।

स्वमनो निग्रहो भूमिर्भूमिः सस्यश्रियामिव ।।

–योगवासिष्ठ (5/43/35)

अर्थात् सब उत्तम परिस्थितियाँ, सब श्रेष्ठ चिर संपदाएँ मन के निग्रह से उसी प्रकार प्राप्त होती हैं जैसे अच्छी भूमि से सब अन्न प्राप्त होते हैं।

मनोमय कोश साधना द्वारा परामनोवैज्ञानिक क्षमता का विकास –

मनोमय कोश की साधना मन के परिष्कार की साधना है। यदि मन को अपने वश में किया जा सके तो यह मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। भारतीय मनीषियों का कथन है कि मन की शक्तियों को ब्रह्म में तादात्म्य कर हाड़–माँस का मनुष्य भी भगवान के समान हो जाता है। उसकी शक्तियों का आश्चर्यजनक और चमत्कारिक विकास इस अवस्था में होता है। इसी कारण आत्म–विकास के लिए की जाने वाली समस्त साधनाओं में जप, ध्यान और एकाग्रता द्वारा मन को ही नियन्त्रित संयमित किया जाता है। महर्षि वसिष्ठ ने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'योग वासिष्ठ' (3/91/17) में कहा है– मन से सब प्रकार की शक्तियाँ हैं। वह अपने भीतर जैसी भावना करता है क्षण भर में वैसा ही हो जाता है।

मनोमय काशे की साधना के द्वारा हम मन को एकाग्र व संयमित करने के पश्चात् परामनोवैज्ञानिक क्षमता का भी विकास कर सकते हैं। क्योंकि इस साधना में सम्मिलित साधनाएँ मन को स्थिर व नियंत्रित

करने में अत्यंत प्रभावी है। मनोमय कोश आत्मा का तीसरा आवरण है। अर्थात् पंचकोशों अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनंदमय काश में तीसरा कोश है। इसे गायत्री का तृतीय मुख भी कहा गया है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना एवं घ्राण) और एक मन, इनका समुदाय ही मनोमय कोश कहलाता है।

पैंगल्योपनिषद् (3) में भी कहा गया है–

''ज्ञानेन्द्रियः सह मनो मनोमय कोशः''

अर्थात् ज्ञानेन्दियों और मन के मिलने से मनोमय कोश बनता है।

कोश खजाने को भी कहते हैं आत्मा के पास पाँच खजाने हैं प्रत्येक में बहुमूल्य संपदायें भरी पड़ी हैं। मनोमय कोश की महत्ता का वर्णन करते हुए वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है–

''मनोमयोऽयं पुरूषो भाः सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदए

तथा ब्रीहिर्वा यत्रो वा स एश सर्वस्एशानः।

सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंच।।''

–वृहदारण्यकोपनिषद् (5,6,1)

अर्थात् यह मनोमय पुरूष प्रकाशमान सत्य स्वरूप है, वह अंतर्हृदय में धान अथवा जौ के सदृश चमकता है। वह सबका ईश्वर, सबका अधिपति इस जगत में जो कुछ है, सब पर शासन करता है।

आचार्य (1998 ङ) के अनुसार ''मनोमय कोश का अर्थ है– विचारशीलता, विवेक, बुद्धि।''

मनोमय कोश के घटक–

मनोमय कोश में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन को घटक के रूप में सम्मिलित किया गया है जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है–

पंचज्ञानेन्द्रियाँ–

इन्द्रियाँ मानव शरीर के अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी अवयव हैं। इन्द्रियों का सम्बन्ध शरीर के साथ केवल इतना है कि वे शरीर में स्थित हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध शरीर की अपेक्षा आत्मा से अधिक है। क्योंकि ये ही इन्द्रियाँ आत्मा को ज्ञान कराने में सहायक होती है। आत्मा को बाह्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मन एवं इन्द्रियों की सहायता लेना अपेक्षित रहता है। इनकी संख्या पाँच है– श्रोत्र (कान),

त्वक् (त्वचा), चक्षु (नेत्र), रसना (जीभ) और घ्राण (नाक)। इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को बुद्धीन्द्रिय भी कहा जाता है। ये इन्द्रियाँ विभिन्न बाह्य विषयों को ग्रहण कर उनका ज्ञान कराने में सहायक होती हैं।

मन–

मन का वर्णन इससे पूर्व ही किया जा चुका है।

मनोमय कोश साधना के अंग–

आचार्य (1998 ख) ने मनोमय कोश की साधना हेतु चार अंग बताये हैं– 1. ध्यान 2. त्राटक 3. जप 4. तन्मात्रा साधना, जिनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से है–

1. ध्यान–

ध्यान वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके अनुसार किसी वस्तु की स्थापना अपने मनःक्षेत्र में की जाती है। मानसिक क्षेत्र में स्थापित की हुई वस्तु हमारे आकर्षण का प्रधान केन्द्र बनती है। उस आकर्षण की ओर मस्तिष्क की अधिकांश शक्तियाँ खिंच जाती है। फलस्वरूप एक स्थान पर उनका केन्द्रीकरण होने लगता है। चुम्बक पत्थर अपने चारों ओर बिखरे हुए लौहकणों को सब दिशाओं से खींचकर अपने पास जमा कर लेता है। इसी प्रकार ध्यान द्वारा मन सब ओर से खिंचकर एक केन्द्र बिन्दु पर एकाग्र होता है। बिखरी हुई चित्त–प्रवृत्तियाँ एक जगह सिमट जाती हैं। ''यह एकाग्रता का अभ्यास चिंतन को नुकीला बनाता है'' आचार्य (1986)।

महर्षि पतंजलि के अनुसार–

''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'' –पा. यो. सू.– 3/2

अर्थात् जहाँ चित्त को लगाया जाय, उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है।

ध्यान अनंत शक्ति, अनंत आनंद, अनंत उत्साह एवं धैर्य का अजस्र स्रोत है। नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करते रहने से हृदय की शुद्धि होती है, मानसिक शक्तियाँ सुदृढ़ बनती हैं। ''ध्यान मन को संकुचित से व्यापक चेतना में ले जाकर शुद्ध चेतना के क्षेत्र में पहुँचने का पथ प्रशस्त करता है'' (चोपड़ा 2006)।

सरस्वती, स्वामी शिवानंद (2000) कहते हैं– ध्यान मन के अतीन्द्रिय ज्ञान व अनेक प्रकार की शक्तियों का द्वार खोलता है ध्यान एक अत्यधिक शक्तिशाली मानसिक और नर्वाइन टॉनिक ;छमतअपदम ज्वदपबद्ध है। ध्यान की अवस्था में एक ऊर्जायुक्त शांतिकारक तरंगें उत्पन्न होती हैं।

2. त्राटक

त्राटक का अर्थ है स्थिर दृष्टि से किसी एक केन्द्र को देखना, इस अभ्यास में एक लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। इसी तरह अन्यत्र भी परिभाषित किया गया है कि सुखासन में बैठकर आँख के सीध की ऊँचाई पर दीपक रखकर उसकी लौ को अथवा धातु या पत्थर की बनी हुई किसी छोटी चीज अथवा कागज पर काला बिन्दु बनाकर बिना पलक झपकाए उसे देखते रहना त्राटक कहलाता है। ''एकाग्रता और सजगता के अभ्यास के रूप में, मन को निर्विकार बनाने और अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए त्राटक का अभ्यास उत्तम माना गया है'' (सरस्वती, स्वामी निरन्जनानंद 1997)।

समस्त सिद्धियों, विभूतियों का उपार्जन एकाग्रता शक्ति द्वारा ही सम्भव होता है। चित्त–निरोध इससे भी आगे की स्थिति है। साधना की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धियों के विभिन्न सोपानों तक की यात्रा एकाग्रता की शक्ति द्वारा ही सम्भव होती है। आचार्य, (1998 च) के अनुसार ''त्राटक का वास्तविक उद्देश्य दिव्य दृष्टि को ज्योतिर्मय बनाना हैं उसके आधार पर सूक्ष्म जगत की झाँकी की जा सकती है। देश, काल, पात्र, की स्थूल सीमाओं को लाँघकर अविज्ञात और अदृश्य का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।''

3. जप

मनोमय कोश की साधना में जप का साधन बड़ा ही उपयोगी बताया गया है। जप का अर्थ है विभिन्न दिशाओं में भटकते हुए मन को एक स्थान में एकाग्र करना और उसकी शक्ति को समेटकर रखना। जप करने से मन की प्रवृत्तियों को एक ही दिशा में लगा देना सरल हो जाता है।

आचार्य (2002) के अनुसार ''जप, मन को वश में करने का रामबाण अस्त्र है और यह सर्वविदित तथ्य है कि मन को वश में करना इतनी बड़ी सफलता है कि उसकी प्राप्ति होने पर जीवन को धन्य माना जा सकता है। समस्त आत्मिक और भौतिक सम्पदायें, संयत मन से ही तो उपलब्ध की जाती हैं।''

4. तन्मात्रा साधना–

हमारा शरीर पंचतत्वों पृथ्वी, जल वायु अग्नि और आकाश से बना है। इन पंचतत्वों की जो सूक्ष्म शक्तियाँ हैं, उनकी इंन्द्रियजन्य अनुभूति को तन्मात्रा कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ– चक्षु, कर्ण, घ्राण, वाक् और त्वचा। ये वस्तुओं के संसर्ग में आने पर जैसा अनुभव करती हैं उस अनुभव को तन्मात्रा कहा जाता है (आचार्य, 1998 छ)। ''शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श ये पाँच तन्मात्राएँ हैं'' (सु.सं. शा. स्थान 1/4)।

इन्द्रियों में तन्मात्राओं का अनुभव कराने की शक्ति न हो तो संसार का और शरीर का संबंध ही टूट जाये। संसार के विविध पदार्थों में जो हमें मनमोहक आकर्षण प्रतीत होते हैं उनका एकमात्र कारण 'तन्मात्र' शक्ति है। इन साधनाओं से अन्तःकरण यह अनुभव कर लेता है कि ''तन्मात्रायें अनात्म वस्तु हैं।'' यह जड़ पंच तत्वों की सूक्ष्म प्रक्रिया मात्र है। मन स्वयं एक इन्द्रिय है। उसका लगाव सदा तन्मात्राओं की ओर रहता

है। मन का विषय ही रसानुभूति है। सभी तन्मात्राओं की साधनाओं द्वारा मन एकाग्र होता है। अतः ''मन को साधनात्मक रसानुभूति में लगा दिया जाय तो वह अपने विषय में भी लगता है और जो सूक्ष्म परिश्रम करना पड़ता है उसके कारण अति सूक्ष्म मनःशक्तियों का जागरण होने से अनेक प्रकार के मानसिक लाभ भी होते हैं'' (आचार्य, 1998 ज)।

उपसंहार–

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनोमय कोश की साधना के द्वारा परामनोवैज्ञानिक क्षमता का विकास किया जा सकता है। परामनोवैज्ञानिक क्षमता का तात्पर्य ही है कि मन की सामान्य क्षमता व शक्तियों से परे मन की एक विशिष्ट क्षमता, यह क्षमता यदि जाग्रत हो सके तो अतीन्द्रिय विषय की जानकारी हो सकती है जैसे–भूतकाल की अविज्ञात घटनाओं का परिचय, भविष्य का पूर्वाभास, दूरवर्ती लोगों के साथ वैचारिक आदान–प्रदान, अदृश्य आत्माओं के साथ संबंध, पूर्वजन्मों की स्मृति, चमत्कारी ऋद्धि–सिद्धियाँ, शाप–वरदान, जैसी घटनाएँ अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ मानी जाती हैं। मनोमय कोश की साधना के सभी अभ्यास मन को एकाग्र व स्थिर बनाते हैं जिससे मन में निहित दिव्य शक्तियों का जागरण हो सकता है। इस अतीन्द्रिय ज्ञान से आत्म चेतना की दुर्लभ अवस्था सिद्ध होती है। उसे प्राप्त करने में ही मानवीय पुरूषार्थ की सार्थकता है, तभी मनुष्य जीवन जैसी परमात्मा की अमूल्यकृति की उपयोगिता और उपादेयता सिद्ध होगी।

संदर्भ सूची

आचार्य, राजकुमार जैन (2003)– आयुर्वेद दर्शन, प्राणावाय (जैनायुर्वेद) शोध संस्थान, दिल्ली, पृष्ठ 68

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 क)– प्राण शक्तिः एक दिव्य अनुभूति, *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़.मय–17,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 12.9–12.10।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 ख)– गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ, *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़. मय–13,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 6.7–6.8।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 ग)– प्राण शक्तिः एक दिव्य अनुभूति, *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़.मय–17,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 12.9।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 घ)– प्राण शक्तिः एक दिव्य अनुभूति, *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़.मय–17,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 12.4।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 ङ)– मनस्विता, प्रखरता और तेजस्विता, *प. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़्मय–57,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 1.5

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 च)–गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ, *प. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़्मय–13,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 6.22।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 छ)–गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ, *प. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़्मय–13,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 6.25

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1998 ज)–गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ, *प. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड़्मय–13,* अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 6.26।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (2000)–पैंगल्योपनिषद्–3, (हिन्दी व्याख्या) ब्रह्मविद्या खण्ड, ब्रह्मवर्चस्, शांतिकुंज हरिद्वार।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (2000)– वृहदारण्यकोपनिषद् –5,6,1, (हिन्दी व्याख्या) ब्रह्मविद्या खण्ड, ब्रह्मवर्चस्, शांतिकुंज हरिद्वार।

आचार्य, श्रीराम शर्मा (1986)– ध्यान धारणा से दिव्य क्षमताओं का आकर्षण, अखण्ड ज्योति, अंक–4, अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा, पृष्ठ 20.21

आचार्य श्रीराम शर्मा (2002)– गायत्री महाविज्ञान संयुक्त संस्करण, ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज हरिद्वार, पृष्ठ–330

चोपड़ा, दीपक (2006)– योग के सात आध्यात्मिक नियम, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, प्राइवेट लिमिटेड 10, निशार कॉलोनी, भोपाल, पृष्ठ 72

महर्षि पतंजलिकृत– योग दर्शन, पा. यो. सू. 3/2 गीताप्रेस, गोरखपुर।

योगवासिष्ठ –5/43/35

योग वासिष्ठ– 3/91/17

सरस्वती, स्वामी निरन्जनानंद (1997)–घेरण्ड संहिता, स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती, मानद सचिव, बिहार योग भारती, मुंगेर, बिहार, पृष्ठ 111

सरस्वती, स्वामी शिवानंद (2000)– साधना, दिव्य जीवन संघ पब्लिकेशन, पृष्ठ–504

सुश्रुत संहिता, शारीर स्थान– 1/4